ISSN: 0973-0583

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में नारी विमर्श : एक अवधारणात्मक अध्ययन

श्रेया सिंह
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, साईं नाथ विश्वविद्यालय, राँची

शोध सार

आज साहित्य संसार में 'स्त्री-विमर्श' शब्द की जोर शोर से चर्चा चल रही है। 'स्त्री-विमर्श' अर्थात् स्त्री से संबंधित चिंतन मनन। क्या साहित्य जगत में इससे पहले स्त्रियों पर चर्चा नहीं हुई? क्या स्त्री पर इतने जोर शोर से चर्चा करना आवश्यक है? क्या यह विषय अन्य सभी विषयों से चर्चा के हेतु अधिक आवश्यक व महत्त्वपूर्ण है? निश्चित ही पहले भी चर्चा होती थी लेकिन इस रूप में नहीं जिस रूप में आज हो रही है। आज की स्त्री शिक्षित व जागरूक है वह अपने बारे में सोचती है और अपना मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्दः साहित्य, पितृसत्तात्मक, समाज, सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक, साहित्यिक, सशक्तिकरण

समाज का दर्पण होता है। यही दुख, यही कष्ट, यही वेदना, यही आत्मबोध के प्रति जागृति स्त्री विमर्श का आधार बनती है। अब दुःख यह बात सोंचकर होता है कि इतना पक्षपात पृथ्वी की आधी आबादी के साथ क्यों होता है? पुरुष चाहे जितना भी अपराध करे, वह सम्मानित जीवन जी लेता है और स्त्री बिना कोई अपराध किये ही अपराध बोध से ग्रस्त अपमान पूर्ण जीवन जीने को क्यों मजबूर रहती है? सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी किस प्रकार मध्य काल तक आते-आते दोयम दर्जे की प्राणी बन गया? आखिर स्त्री में इतना आत्मविश्वास की कमी क्यों है? स्त्री और पुरुष की अस्मिता तो बरकार है लेकिन स्त्री की अस्मिता समाप्त क्यों हो गई? पुरुष और स्त्री दोनों एक ही साथ एक स्थान पर एक जैसी स्थिति में रहते हैं तो स्त्री का सामाजिक, राजनीतिक, मानसिक, आर्थिक आदि विकास पुरुष की अपेक्षा कम क्यों हुआ? क्यों? इसी प्रकार के अनगिनत प्रश्नों के उत्तर जानने की आतुरता और स्त्री की इस दशा में सुधार का प्रयास ही 'स्त्री-विमर्श' की आधारभूमि बने। ये सारे ही प्रश्न आज स्त्री मन को उद्वेलित करते हैं।

'साहित्य समाज का दर्पण होता है' जिसमें उस का प्रत्येक स्पन्दन अभिव्यक्त होता है। पुरुष समाज द्वारा किये गये अत्याचार जब चरम पर पहुँच गये जिसके कारण स्त्रियों की पीड़ा जब चरम पर पहुँचने लगी, तब साहित्यकारों का ध्यान इस तरफ गया। यह सत्य है कि नारी हमेशा साहित्य के केन्द्र में रही। लेकिन उसको कभी देवी के रूप में पूजा कभी रमणी के रूप में, कभी दासी के रूप में, कभी वस्तु मान उसे भोग्य के रूप में ही साहित्य में स्थान मिला। स्त्री के वास्तविक रूप-स्त्री रूप में उसका वर्णन कभी नहीं किया गया, जब स्त्री वेदना असहनीय हो गयी तो उसी वेदना (स्त्री) ने ही स्त्री वेदना की जड़ को खोजने के लिए साहित्यकारों को प्रेरित किया। इसी गम्भीर समस्या पर साहित्यकारों ने विभिन्न आयामों से विचार किया। इस प्रकार स्त्री के गम्भीर प्रश्नों पर साहित्य में छिड़ी बहस ही 'स्त्री-विमर्श' का रूप धारण किया।

'स्त्री-विमर्श' शब्द क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में कह सकते हैं कि ''परिवार, मातृत्व, शिशुपालन सहित समस्त सामाजिक गतिविधियों एवं संस्थाओं में स्त्री की भूमिका, अन्य सामाजिक-आर्थिक शोषण उत्पीड़न, के साथ ही यौन-भेद पर आधारित स्त्री-उत्पीड़न, स्त्री-मुक्ति से जुड़ी सभी जटिल समस्याओं को साहित्य में चिंतन का विषय बनाना ही स्त्री विमर्श है। पितृसत्ता यदि स्त्रियों को

पुरुषों के अधीन रखने के लिए तमाम तरह के बन्धनों में जकड़ देने का नाम है तो 'स्त्री-विमर्श' उन बन्धनों से मुक्त होने के लिए संघर्ष करने तथा स्त्री-पुरुष की समानता के लिए किये गये प्रयास का नाम है। 'स्त्री-विमर्श' मूलत: स्त्रियों को पुरुषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायत्ता के लिए किया जाने वाला संघर्ष है तथा यह स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में परिवर्तन के लिए भी संघर्षरत है।'[2]

पितृसत्तात्मक समाज के मूल्य क्या है? तो पितृसत्ता के विषय में कहा जा सकता है कि-''पितृसत्ता सामाजिक संरचना और क्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें पुरुषों का स्त्रियों पर वर्चस्व रहता है और वे उसका शोषण तथा उत्पीड़न करते हैं।''[3] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि पुरुषों का समाज के सभी महत्वपूर्ण प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण रहता है और महिलाएँ इन सत्ता के पदों से वंचित है लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि महिलाएँ शक्तिहीन हैं। प्रभा खेतान ने अपनी पुस्तक 'उपनिवेश में स्त्री' में पितृसत्ता को इस प्रकार स्पष्ट किया है-''पितृसत्ता एक सामाजिक घटना है, हजारों साल से चली आ रही ऐसी व्यवस्था है, जिसमें स्त्री की अधीनस्थता सर्वविदित है। पितृसत्ता ने स्त्री को अपने ज्ञान की वस्तु बनाया। उसे साधन के रूप में प्रयोग किया। उसके नाम, रूप, जाति, गोत्र सब अपने संदर्भ में परिभाषित किए। स्त्री का यह अमानवीयकरण दलित के अमानवीयकरण से कहीं ज्यादा सूक्ष्म है, क्योंकि दलित पुरुष भी तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था का सदस्य है और पुरुषोचित अहंकार के कारण स्त्री का शोषण और उत्पीड़न करने से वह भी बाज नहीं आता।''[4] इस प्रकार ''पितृसत्तात्मक समाज के मूल्य भी स्त्री विरोधी होते हैं क्योंकि पितृसत्तात्मक समाज ने ही समाज के मूल्य गढ़े हैं। इसलिए जाहिर है वे इन मूल्यों को अपने समर्थन में बनाये होंगे तथा इन मूल्यों का मूल चरित्र भी स्त्री विरोधी होता है जिन्हें हम मानव मूल्य नहीं कह सकते। जो मूल्य स्वयं आधी मानवता पर घोरत्तम अत्याचार करवायें उसको नष्ट करें, उसका शोषण करें, वे मानव मूल्य हो ही नहीं सकते। क्योंकि अगर हम प्रसूतिगत की बात करते हैं, तो हमें मातृत्व हीन स्त्री कहा जा सकता है। अगर हम रोमांस के बारे में सोंचते हैं, तो हमारी अपनी लक्ष्मण रेखाओं को पार करने के लिए आलोचना की जाती हैं, संसार के एक बड़े भूभाग ने हमें घेर कर रखा है। यह लिंगभेद हमें बचपन से ही एक आवाजहीन, आत्महीन औरत के लिए अनुशासित करता आया है। जिस समाज में तर्क का गला घोंट दिया गया है, रूप कुँवर को सती बनाया जा रहा है, भँवरी देवी का बलात्कार हो रहा है, वहाँ कानून भी निस्सहाय लोगों की नहीं, अपराधियों की मदद के लिए तैयार खड़ा रहता है। हम रिवाजों के नाम पर तकलीफों को झेलते रहते हैं। हमें अपनी महावारी के वक्त अछूत की तरह देखा जाता है, रिवाजों के नाम पर स्त्री मरती रही है।''[5]

इस प्रकार पितृसत्तामक समाज ने स्त्रियों के लिए कठोर मूल्यों का निर्माण किया लेकिन आज 'स्त्री-विमर्श के कारण स्त्री उन निरंकुश व कठोर मूल्यों के पीछे छिपे असली रहस्य को पहचान करना है। इसी स्त्री-विमर्श के कारण ही विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियों ने अपनी 'अस्मिता के विषय में विचार करना शुरू कर दिया हैं। वह सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक, साहित्यिक विभिन्न क्षेत्रों में अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को पहचान गए है। पहले उनके जीवन के अधिकतर निर्णय पुरुष करते थे। आज स्त्रियाँ स्वाधिकारों के प्रति सचेत रहने और सोचने के प्रति जगी हैं। साँचे में ढालने वालों की सोच, विचारधारा हमेशा ही प्रभुत्वशाली होती है कि उन्हें किस प्रकार से अनुकूलित नियंत्रित करने की जरूरत है। बचपन से ही लड़की को अनुशासन के कठोर साँचों में जकड़ दिया जाता है। इस प्रकार पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्रियों की 'अस्मिता' को छीना। प्रश्न उठता है कि 'अस्मिता' क्या है? तो-''अस्मि अर्थात् मै हूँ'। अस्मि की भाववाचक संज्ञा अस्मिता है। यह स्वत्व का बोध है, आत्मनिर्णय और आत्माभिव्यक्ति का प्रश्न है जो किसी को 'व्यक्ति' बनाता है। 'कोहं' का उत्तर खोजने के क्रम में हम अपनी छवि निर्धारित करते हैं और अपने कर्मों का चुनाव भी अस्मि का भाव अन्यता और सामान्यता को एक साथ समेटता है। यानी जो हम 'है और जो हम 'नहीं हैं' का एकत्र बोध अस्मिता की रचना करता है। उदाहरण के लिए, स्त्री होने का अर्थ एक साथ अन्य स्त्रियों के समान तथा पुरुषों से भिन्न होना है।

मूल्यों के कारण ही स्त्री पहले भी सताए गए। वर्तमान में भी उसका शोषण हो रहा है। नयी चाहे उच्च पद पर भी आसीन है परिवार में आकर उसे पुरुषवादी अहमन्यता का शिकार होना ही पड़ता है और यही शोषण उसकी बौद्धिक रचना शक्ति को नष्ट करता है। प्राचीन काल को छोड़ दें तो इतिहास के हर दौर में स्त्री छली व ठगी गई है, उस पर घोर दमनात्मक अत्याचार किया गया है। अत: स्त्री विमर्श ने पितृसत्ता तथा पितृसत्तात्मक समाज द्वारा निर्धारित मूल्यों के विरूद्ध अपनी आवाज बुलंद की।

स्त्री विमर्श भी अलग-अलग स्थानों व समयों में अलग रहा है। कह सकते हैं कि स्त्री विमर्श बहुआयामी रहा है। कभी यह सारे संसार की स्त्रियों के द्वारा संसार के समस्त पुरुषों का विरोध करने वाली विचारधारा होती है तो कभी यह विमर्श स्त्री की यौन-स्वच्छन्दता की वकालत करने वाले विचार के रूप में सामने आया। 'स्त्री-विमर्श वास्तव में महिला उत्पीड़न व शोषण के विभिन्न पहलुओं को समझने की दिशा में गतिशील और निरन्तर परिवर्तित होने वाली विचारधारा है जिसके मूल में एक विचार है कि मौजूद स्त्री-पुरुष संबंधो में बदलाव आए और स्त्रियों को भी स्वन्त्रता और समानता प्राप्त हो। स्त्री को मनुष्य समझा जाय वस्तु नहीं। उसके अस्तित्व की सार्थक पहचान हो इस प्रकार स्त्री विमर्श वर्तमान समय में एक ज्वलन्त मुद्दा बन गया है क्योंकि यह दुनिया की आधी आबादी से जुड़ा हुआ है। स्त्री विमर्श के संबन्ध में कुछ विद्वानों की धारणा इस प्रकार है-''नारी विमर्श ने नारी समस्या को ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उठाया है। उसने समाज रचना के वर्ग तथा वर्ण की विसंगतियों, शोषक शासक व पुरुषमात्र के उद्दाम भोग विलास, नारियों के संत्रास, अमानवीय शोषण और सभी वर्गो वर्णों में नारी-पराधीनता का बड़ा तीखा व मार्मिक चित्रण किया है। जन्म पर आध ारित, विषमतामूलक वर्णाश्रम धर्म और वंश-शुद्धि पर जोर देने वाली अन्यायी, अत्याचारी, वशिष्ठी परम्परा में स्त्री सर्वथा पराधीन, पुण्य वस्तु व दासी ही रही है। नारी विमर्श स्त्री की हकीकत का जीवंत दस्तावेज है''[6]

''नारी जीवन और शरीर पर नारी के अधिकारों का ही दावा होना चाहिए। पुरुष समाज के विधान में पर वश होकर एक गुलाम और शोषित का जीवन धर्म वह क्यों स्वीकार करे? स्त्री विमर्श में इसी विचारधारा का चित्रण होता।''[7]

इस प्रकार नारी विमर्श के परिणाम स्वरूप महिला सशक्तिकरण हो स्त्री है। आज वह अपने अस्तित्व को पहचान अपनी क्षमताओं का विकास कर परिवार समाज तथा देश के विकास में अपना अनमोल योगदान दे रही है। हम कह सकते हैं कि- सशक्तिकरण महिलाओं के उन अधिकारों व शक्तियों से संबंध रखता है जो उनके समग्र जीवन स्तर को ऊँचा उठा सके उन्हें जीवन में ऐसे अवसर प्रदान कर सके, जिससे वे जागरूक बनकर जीवन के विभिन्न पक्षों के महत्व को समझ सकें।

आज स्त्रियाँ मर्दों के बनाये विधान से बाहर निकल रही है, उसे तोड़ रही है उसे राजनीतिक अधिकार प्राप्त है उसे सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त है वह समाज व परिवार से स्वतंत्र है उसका अपनी देह पर पूरा अधिकार है। वह पुरुष के समान नहीं जीवन के विविध क्षेत्रों में कदम मिलाकर चल रही है। कुल मिलाकर आज व पूर्ण स्वच्छन्द है। इतना सब होने के बावजूद नारी का दुर्भाग्य अथवा सीमा है कि जहाँ वह अपने अविष्कार को अत्यन्त स्पष्ट ढंग से जानती है। वहीं स्वीकार को लक्ष्य को उतने ही सुस्पष्ट प्रत्यक्ष मूर्तिमान रूप में पहचान नहीं पाए हैं। फलत: व्यक्ति बनने की चाह में शुरू किया गया संघर्ष अपनी ही स्पष्ट जटिलताओं में उलझकर लीक से हटकर नए भौतिक उपलब्धियाँ प्राप्त कर दम तोड़ रहा है।

दरअसल, पितृसत्तात्मक समाज में अब स्त्रियों की जितनी जरूरत घर परिवार के लिए है, उतनी ही घर से बाहर भी है। घर में पूंजी के पुत्राधिकारी जन्मने वाली सती सावित्री चाहिए और बाहर उपभोक्ता बाजार के लिए शिक्षित, सुन्दर और स्वतंत्र स्त्रियाँ। यानी घर में बुर्के या घूँघट वाली तो बाहर बिकनी या स्कर्ट वाली स्त्री विश्व बाजार में ग्राहक को सेवा, मॉल ब्रांड या ट्रेडमार्क बेचने के लिए सुन्दर मॉडल, सेल्सगर्ल, एयर होस्टेस, हीरोइन वगैर चाहिए। अर्धनग्न विज्ञापन, ब्लू फिल्म, और व्यस्क पत्रिकाओं के लिए विश्व सुदरियाँ जुटाने के लिए सौंदर्य प्रतियोगिताओं में लाखों करोड़ों के इनाम का लालच तो देना ही पड़ेगा। इतना ही नहीं सदियों के संस्कार और शर्म लिहाज से मुक्त करने के लिए यह पाठ भी पढ़ाना पड़ेगा कि तुम इस सुंदर देह की स्वयं स्वामी हो, इसका जैसे चाहो उपयोग उपभोग कर सकती हो, नैतिकता, मर्यादा और अश्लीलता से डरने की कोई जरूरत नहीं।

पूर्व की देवी आज पश्चिम की सुन्दर गुड़िया तो नहीं बन रही? क्या आर्थिक स्वतंत्रता से उनमें इतनी हड़बड़ाहट है कि वे तय ही नहीं कर पा रही कि क्या अपनाएँ और क्या न अपनाएँ? क्या वह सवाल नहीं उठता कि यौन स्वतंत्रता स्त्री को अपना पुराना इतिहास दोहराने की राह पर ले जा रहा है? आज के समय में औरत की देह ही प्रमुख है जैसा कि मध्ययुग में था। तब स्त्री देह को धर्म व मर्यादा के आवरण में रखा जाता था। आज बाजार बनाने हेतु उसे अनावृत किया जा रहा है। स्त्री देह की भौगोलिक अर्थव्यवस्था ही केन्द्र में है। यही उनका इतिहास भी रहा है। देह तब स्त्री की कमजोरी थी अब उसकी महत्वाकांक्षा पूर्ति का साधन है। इसी साधन के द्वारा वह अपनी मंजिल तय करना चाहती है।

आज आवश्यकता है एक नवीन जीवन बोध पर आधारित भारतीय परिवेश के अनुकूल व संस्कृति के रक्षक परिवार व समाज की सकारात्मक भूमिका को मान्यता प्रदान करने वाले स्वस्थ स्त्री विमर्श की। महादेवी वर्मा ने इस स्वस्थ नारी विमर्श को इस प्रकार स्पष्ट किया है-''आज आजादी माँगने से मिलती कहाँ है? आजादी तो हम औरतों को छीनकर लेनी होगी, परन्तु समता के नाम पर पश्चिम से उधार ली हुई समता की बात से मैं सहमत नहीं हूँ। समता की बात कहकर औरत मर्द बन जाना चाहती है, जबकि उस मर्द नहीं विवेकशील विचारवान औरत बनना है। यह नये और पुराने के संतुलित समन्वय से संभव होगा।''[8]

महादेवी वर्मा ने एक स्वस्थ नारी विमर्शश्रृंखला की कड़ियाँ (1942) में अपने निबंध में प्रस्तुत किया है। वे सृजन पर विश्वास करती है और उनका ध्वंस के द्वारा पुनर्सृजन पर विश्वास नहीं है। उनका नारी चिंतन समाज व परिवार सापेक्ष है जो भातीय परिवेश व संस्कृति के अनुकूल है। वे बंधनों में जकड़ी नारी को सचेत करती हुई लिखती हैं-''इतना ध्यान रहना चाहिए कि बेड़ियों के साथ ही उसी अस्त्र से बंदी यदि पैर भी काट डालेगा तो उसकी मुक्ति की आशा दुराशा मात्र रह जायेगी।''

❖❖❖

निष्कर्ष:

इस प्रकार नारी विमर्श निश्चित ही स्त्री स्वतंत्रता समानता व मुक्ति का प्रदाता है परन्तु आवश्यकता है उसके सकारात्मक स्वीकार की तथा उसमें कुछ मूलभूत चिंतन की जिससे परिवार समाज जैसी संस्थाओं को बिना तोड़े नारी को उसके अधिकार उसका सम्मान उसका स्थान उसे प्रदान किया जा सके। आवश्यकता है उन प्रश्नों के उत्तर ढूँढने की जिसमें स्त्री मुक्ति का अर्थ मात्र स्त्री की देह मुक्ति से लगाया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. हिन्दी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि, डॉ0 विनय कुमार पाठक, तसलीमा नसरीन की उद्धत कविता-पृ0-138-139
2. कमलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श-
   डॉ0 करूणा शर्मा-पृ0-59
3. कमलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श-डॉ0 करूणा शर्मा-पृ0-59
4. पनिवेश में स्त्री-प्रभा खेतान-पृ0-39
5. पूर्वाग्रह-104, आपका जवाब क्या है? निर्मला कोंडेपुरी, पृ0-98-99
6. आपका जवाब क्या है? निर्मला कोंडेपुरी, पृ0-98-99
7. हिन्दी साहित्य की वैचारिक पृष्ठ भूमि-
   डॉ0 विनय कुमार पाठक, पृ0-137
8. आजकल-मार्च-2007, पृ0-2